International Journal of Education and Science Research Review
E-ISSN 2348-6457
Volume-10, Issue-2 March-April-2023
P-ISSN 2349-1817
www.ijesrr.org Email- editor@ijesrr.org

# हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग

**डॉ अनिता यादव**
सह आचार्य , हिंदी
राजकीय महाविद्यालय बून्दी

**सार**

यह साहित्य दलित साहित्य के नाम से साहित्य में अपनी पहचान रखता हैं । दलितों ने अपने साहित्य के माध्यम से अपने जीवन के यथार्थ को पटल पर रखा हैं । समाज द्वारा दी गई वेदना, पीड़ा, उपेक्षा आदि विभिन्न समस्याओं को इस वर्ग ने अपने साहित्य में अभिव्यक्ति दी है। दलित साहित्यकारों का दायित्व है कि वे अपने लोगों को शोषण और अन्याय से बचायें। उनका दलित लेखन मानव जाति के सभी सदस्यों को आर्थिक और सामाजिक शोषण के साथ–साथ धर्म और जाति–आधारित अत्याचार के बंधनों से मुक्त करता है। दलित साहित्य का लक्ष्य लेखन के माध्यम से दलित लोगों के लिए एक सांस्कृतिक पहचान बनाकर सामाजिक अन्याय, मानवीय पीड़ा और शोषण से मानवता की रक्षा करना हैं।

**मूल शब्द :–** हिन्दी, उपन्यासों, दलित

**परिचय :–**

दलित साहित्य की अवधारणा वास्तव में दलित की अवधारणा से जुड़ी है। दलित के कई संदर्भगत अर्थ निर्धारित किये गये हैं एक अर्थ हैं ''शोषित'', एक अर्थ है ''पराजित'', जिसमें दमित, उपेक्षित आदि अनेक अर्थ शामिल हैं, एक अर्थ ''पद्दलित'' हैं, जिसमें पैरों से कुचला, रौंदा हुआ आदि अर्थ समाविष्ट हैं। माताप्रसाद ने दलित शब्द के अनेक प्रयोगात्मक अर्थ बताये हैं, जिनमें 'चांडाल', 'अस्पृश्य', 'अछूत' आदि शामिल हैं। दलित शब्द का व्यापक सामाजिक अर्थ 'गुलाम', भूमिहीन भी है। दलित साहित्य युगों के शोषण से उपजी सामाजिक परिवर्तन की साहित्यिक क्रांति है। दलित साहित्य ने अस्पृश्य माने जाने वाले समाज को मंच उपलब्ध करवाया, जिसके माध्यम से वह अपने ऊपर हुये अत्याचार, जोर जुल्म तथा शोषण से मुक्त हो सके, असमानता तथा अन्याय को दिखाकर उसके प्रतिकार में अपेक्षित सहयोग जुटा सके। यद्यपि दलित साहित्य का वास्तविक आरंभ तो मराठी से ही हुआ और बाद में हिन्दी में भी अनेक साहित्यकारों द्वारा दलित साहित्य लिखा जाने लगा। आज दलित साहित्यकारों की संख्या बढ़ने के कारण रचना कार्य और सर्जना की अनुभूतियाँ भुक्तभोगी यथार्थ के नाम पर दलित साहित्य को प्रश्नों के कठघरे में खड़ा करने लगी है। गैरदलित लेखकों द्वारा रचे गये दलित साहित्य को कल्पित तथा मनगढ़ंत कहा गया है। दलित साहित्यकारों का कार्य क्रांतिकारी लेखन द्वारा शोषण और उत्पीड़न से रक्षा करना है। उनका साहित्य जाति और धर्मगत उत्पीड़न से समग्र मानवजाति को आर्थिक और सामाजिक शोषण से मुक्ति दिलाता है। दलित साहित्य दलित समुदाय की एक सांस्कृतिक पहचान बनाता है तथा सामाजिक अन्याय, मानवीय यातनाओं तथा शोषण से मानवता की रक्षा की अपेक्षा रखता है। दलित साहित्य की पहचान यही है कि इसने धरती से जुड़े लोगों की समस्याएँ तथा दुर्दशाओं का समाधान बताया। कमलेश्वर ने दलित साहित्य को मानवतावादी साहित्य कह कर इसकी उदात्तता स्पष्ट की। विशुद्ध मानवता की मांग करने वाला यह साहित्य दलित जीवन की भयावह यातनाओं का खुला चित्रण करता है। इसी कारण आज दलित साहित्य की आवश्यकता तथा महत्व है।

यद्यपि हिन्दी उपन्यास साहित्य का आरंभ 1880 ईसवीं के आसपास हो गया था, लेकिन सही मायनों में विकास प्रेमचन्द के कथा लेखन से हुआ। हिन्दी कथा साहित्य में दलित विमर्श प्रेमचंद की रचनाओं में पूरी संवेदना के साथ उभरकर सामने आता है। प्रेमचन्द के सभी उपन्यासों में दलित जीवन का विविध चित्रण मिलता हैं, जिससे उनके गहरे मानवतावादी व दलित पक्षधर होने का परिचय मिलता है। प्रेमचन्द के बाद भी दलित जीवन का चित्रण उपन्यासों में होता रहा। जैसे, आचार्य चतुरसेन शास्त्री, अज्ञेय, अमृतराय, रामदरश मिश्र, शिवप्रसाद सिंह, ब्रजभूषण, ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, सूरजपाल चौहान, जयप्रकाश कर्दम, गिरिराज किशोर, मन्नू भण्ड़ारी आदि ने दलित जीवन को केंद्र में रखकर उपन्यासों की रचना की जिनमें दलितों की समस्याएं किसी न किसी रूप में सामने आई है तथा दलित जीवन का यथार्थ अंकन हुआ है । प्रेमचन्द से पूर्व हिन्दी उपन्यासों में बदलते हुए भारतीय समाज के विभिन्न आयाम सामने आते है। प्रेमचन्द ने हिन्दी उपन्यासकारों को यथार्थवादी दृष्टि दी तथा अपने उपन्यासों में मानवतावादी भूमिका से अनुप्राणित होकर दलितों के प्रति साहनुभूति व्यक्त करते हुए अछूतोद्धार व दलितोद्धार के प्रभावशाली अंकन अपने उपन्यासों में उपस्थित किये। उन्होंने हिन्दी उपन्यासों को जो दृष्टि दी, वह आज भी विकसित हो रही है। इसी विकास के परिणाम स्वरूप दलित वर्ग से संबंधित उपन्यासों की रचना भरपूर मात्रा में हो रही है।

हिन्दी उपन्यास साहित्य में दलित वर्ग को केंद्रित करके उपन्यास लेखन की जो पंरपरा चली आ रही है वह अब जोर पकड़ रही है। इस श्रृंखला के उल्लेखनीय उपन्यासकारों में गिरिराज किशोर का उपन्यास ''परिशिष्ट'' की गणना की जा सकती है। एक सशक्त कथाकार, नाटककार तथा आलोचक होने के साथ साथ गिरिाज किशोर एक प्रतिष्ठित उपन्यासकार हैं। 'चिड़ियाघर', 'दावेदार', 'तीसरी सत्ता', यथा प्रस्तावित, यातनाघर, दो यात्राएँ, इन्द्र सुनें, परिशिष्ट आदि उनके काफी चर्चित उपन्यास है। उनका परिशिष्ट 1984 में प्रकाशित उल्लेखनीय उपन्यास है। जिसमें विशेष रूप से संस्थाओं में दलित विद्यार्थियों के साथ जो अमानवीय व्यवहार तथा अत्याचार होता हैं, उसे केन्द्रीय विषय बनाया गया है। यह दलित छात्रों की शिक्षा को उजाकर करने वाला उपन्यास है, जिसकी पृष्ठभूमि उस समय को दर्शाती है जब पहली बार भारत सरकार ने दलित छात्रों के लिए आईआईटी आदि शिक्षा संस्थाओं में सीटें आरक्षित की थी। लेकिन ऐसे समय में भी छात्रों को बहुत समस्याओं से गुजरना पड़ा । सवर्णों की संकुचित मानसिकता के चलते लेखक ने प्रश्न उपस्थित किया हैं कि आरक्षण से कितने दलित लाभान्वित होंगे ? उपन्यासकार ने एक पर्याप्त व्यापक फलक पर इस समस्या को उठाने की कोशिश की है। आरक्षण की समस्या का समाधान ढ़ूँढ़ना आज की आवश्यकता है। उपन्यासकार ने दावा किया हैं कि आरक्षण से दलितों को लाभ हुआ मगर उनकी स्थिति में कुछ बदलाव नहीं आया। सवर्ण समाज की मानसिकता आज भी ज्यों कि त्यों बनी हुई है। इसी का चित्रण 'परिशिष्ट उपन्यास में किया गया है । राजनीतिक नेता का व्यवहार, दलितों के बारे में सरकारी अधिकारियों का दृष्टिकोण, आईआईटी का कारोबार, राजनीतिक, भ्रष्टाचार, संसद का कार्य, सवर्णों की पारंपरिक मानसिकता, दलितों का बदतर जीवन आदि का यथार्थ अंकन परिशिष्ट उपन्यास में गिरिराज किशोर ने किया है। अनुकूल उपन्यास का नायक तथा प्रमुख पात्र है। रामउजागर और अनुकूल पात्रों के माध्यम से उपन्यासकार ने दलित जीवन की समस्याओं को वाणी प्रदान की है। अन्य पात्रों में बावनराव आधुनिक विचारों वाले तथा आदर्श पिता हैं जो अपने बेटे अनुकूल को इंजीनियर बनाना चाहते थे। नीलम्मा प्रगतिवादी सवर्ण पात्र, अनुकूल पढ़ा लिखा दलित, रामउजागर जातीय व्यवस्था का शिकार पात्र रहा है। यह अभिजात्यों द्वारा दलित प्रतिभा को उभरने न देने, उसे ढंके रखने तथा अनादर या उपेक्षा को सूचित करता

है। दलित समाज का जीवन तमाम आरक्षणों के बावजूद भी उनके सामने जी पाने की समस्याएँ, प्रशासन की लापरवाही जातिगत वैमनस्य आदि प्रश्नों को उठाता हुआ ''परिशिष्ट एक प्रासंगिक रचना हैं।

उपन्यासकार के अनुसार सरकार दलितों के लिए सुविधायें दे रही हैं, विकास का प्रयास कर रही है। आरक्षण का आधार लेकर दलित युवाओं को उच्च शिक्षा संस्थाओं में प्रवेश मिल रहा हैं। परिणामस्वरूप दलित समाज में चेतना जाग्रत हो रही हैं परन्तु सवर्ण का सहयोग मिलना भी जरूरी है। 'परिशिष्ट उपन्यास के माध्यम से लेखक ने दलित एंव सवर्णों दोनों की मानसिकता को दर्शाया है। उपन्यास का नायक दलित समाज का प्रतिनिधि पढ़ालिखा अनुकूल एक संकल्पशील युवा हैं, जो सवर्णो की त्रासदी सहता है, भोगता है पर विचलित नहीं होता। वस्तुतः 'परिशिष्ट' उपन्यास संघर्ष और संकल्प की महागाथा है।

मन्नू भण्डारी का 1979 में प्रकाशित ''महाभोज'' उपन्यास राजनीति में पिसते दलित समाज की दास्ताँ है। 'महाभोज' भारतीय समाज का उपेक्षित वर्ग दलितों के उत्पीड़न के संदर्भ में सत्ताहीन राजनीतिक दलों की साजिश की कहानी के यथार्थ को प्रस्तुत करने वाला उपन्यास है। इस उपन्यास के कथ्य के केन्द्र में दलित जीवन का यथार्थ, उसका शोषण अत्याचार आदि प्रत्यक्ष रूप में तो नहीं है, लेकिन अप्रत्यक्ष रूप में भी जो दलित जीवन का संदर्भ है, उससे दलित जीवन की वास्तविकता काफी हद तक खुलकर सामने आती हैं। 'महाभोज' उपन्यास मूलतः राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में लिखा गया है ।अतः दलितों के घर जला देने की घटना गौण हो जाती है। इसके बावजूद भी उपन्यास में यह घटना अपनी मार्मिकता के साथ अपना स्थान बनाये रखती है। इस घटना से स्पष्ट होता है कि सरोहा गाँव में दलित बस्ती में कुछ झोपड़ियों में आग लगाकर जानवरों और दलितों को आग में भून दिया जाता है। संपूर्ण उपन्यास आज की सच्चाई को उजागर करता है कि प्रजातांत्रिक व्यवस्था में गरीब व श्रमजीवी दलितों के प्राणों का महत्व किसी पशु से अधिक नहीं हैं। 'महाभोज' उपन्यास में लेखिका ने दलित वर्ग के उपेक्षित जीवन का चित्रण करते हुये समयगत सच्चाई को उजागर किया है तथा आज के स्वार्थी राजनेताओं की पोल खोली है।

''महाभोज'' उपन्यास का आरंभ है– बिसू की मृत्यु, जिसकी लाश सारोहा गाँव में नजर आती है। बिसू की मृत्यु से पहले गाँव में आगजनी की घटना घटी थी। इन दो घटनाओं के प्रति सहानुभूति दिखाने हेतु सतासीन राजनीतिक दल बिना किसी भी तरह की मानवीय संवेदना के सत्ता का राजनीति के लिए इस्तेमाल करते हैं। उपन्यास में न तो उन दलितों को किसी भी प्रकार की राहत या उनके जीवन के दुखो को कम करने की किसी कोशिश का कोई मानवीय उपाय है, जिनके घर जले है या आदमी जले और न ही बिसू के परिवार के प्रति किसी की कोई संवेदना अभिव्यक्त हो पाती है। देश की तथाकथित आजादी और दलितों के हितों का दिखावा महाभोज उपन्यास में स्वतः उद्घाटित होता चलता है। जाहिर है कि सत्तासीन और विरोधी दल के नेता दलितों के प्रति सहानुभूति दिखाकर वोट बटोरने हेतु नकली संवेदना प्रकट करते हैं।

## अवधारणा

दलित साहित्य की अवधारणा को लेकर लंबी बहसें चलीं, यह सवाल दलित साहित्य में प्रमुखता से छाया रहा कि दलित साहित्य कौन लिख सकता है, यानी स्वानुभूति ही प्रामाणिक होगी या सहानुभूति को भी स्थान मिलेगा। प्रमुख दलित साहित्यकारों ने कहा चूंकि सवर्णों ने दलितों की पीड़ा को भोगा नहीं, इसलिए वे दलित साहित्य नहीं लिख सकते, हालांकि यह मत ज्यादा दिनों तक टिका नहीं, लेकिन आरंभ में बहस का मुद्दा बना रहा। प्रोफेसर चौथी राम यादव के अनुसार– हिन्दी पट्टी में जो नवजागरण आया उसमें साम्राज्यवाद विरोधी राष्ट्रीय जागरण के साथ ही सामंतवाद विरोधी दलित जागरण के स्वर भी प्रस्फुटित हुए थे, जिसकी कोई नोटिस ही नहीं ली गई। भारत में एक समय स्वामी अछूतानन्द हरिहर के दलित आंदोलन की बड़ी धूम थी। स्वामी जी की कविताएँ दलित समाज मे आत्मसम्मान और आत्मगौरव का बोध जगा रही थी। इनकी कृतियों में मायानन्द बलिदान, रामराज्य न्याय, आदिवंश का डंका आदि ऐसी महत्वपूर्ण कृतियाँ हैं जिनका दलित समुदाय पर व्यापक प्रभाव पड़ा था, अछूतानंद से प्रभावित दलित कवियों की एक पूरी श्रृंखला मिलती है जिसमें दर्जनों कवि कविताएँ लिख रहे थे, उनमें जनकवि बिहारी लाल हरित सबसे प्रखर और लोकप्रिय कवि थे। दलित साहित्य एक साहित्यिक आंदोलन है जिमें प्रमुखता से दलित समाज में पैदा हुए रचनाकारों ने हिस्सा लिया और इसे अलग धारा मनवाने के लिए संघर्श किया। ।1।

## आधुनिक भारत व दलित अधिकार

आज दलितों को भारत में जो भी अधिकार मिले हैं उसकी पृष्ठभूमि इसी शासन की देन थी। यूरोप में हुए पुर्नजागरण और ज्ञानोदय आंदोलनों के बाद मानवीय मूल्यों का महिमा मंडन हुआ। यही मानवीय मूल्य यूरोप की क्रांति के आदर्श बने। इन आदर्शों के जरिए ही यूरोप में एक ऐसे समाज की रचना की गई जिसमें मानवीय मूल्यों को प्राथमिकता दी गई। ये अलग बात है कि औद्योगिकीकरण के चलते इन मूल्यों की जगह सबसे पहले पूंजी ने यूरोप में ली। लेकिन इसके बावजूद यूरोप में ही सबसे पहले मानवीय अधिकारों को कानूनी मान्यता दी गई। इसका सीधा असर भारत पर पड़ना लाजमी था और पड़ा भी। इसका सीधा सा असर हम भारत के संविधान में देख सकते हैं। भारतीय संविधान की प्रस्तावना से लेकर सभी अनुच्छेद इन्हीं मानवीय अधिकारों की रक्षा करते नजर आते हैं।

भारत में दलितों की कानूनी लड़ाई लड़ने का जिम्मा सबसे सशक्त रूप में डॉ. अम्बेड़कर ने उठाया। डॉ. अम्बेड़कर दलित समाज के प्रणेता हैं। बाबा साहब अम्बेड़कर ने सबसे पहले देश में दलितों के लिए सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक अधिकारों की पैरवी की। साथ ही भारतीय समाज के तात्कालिक स्वरूप का विरोध और समाज के सबसे पिछड़े और तिरस्कृत लोगों के अधिकारों की बात की। राजनीतिक और सामाजिक हर रूप में इसका विरोध स्वाभाविक था। यहाँ तक की महात्मा गाँधी भी इन मांगों के विरोध में कूद पड़े। बाबा साहब ने मांग की कि दलितों को अलग प्रतिनिधित्व (पृथक निर्वाचिका) मिलना चाहिए। यह दलित राजनीति में आज तक की सबसे सशक्त और प्रबल मांग थी। देश की स्वतंत्रता का बीड़ा अपने कंधे पर मानने वाली कांग्रेंस की सांसें भी इस माँग पर थम गई थी। कारण साफ था, समाज के ताने–बाने में लोगों का सीधा स्वार्थ निहित था और कोई भी इस ताने बाने में जरा सा भी बदलाव नहीं करना चाहता था।

महात्मागाँधी जी को इसके विरोध की लाठी बनाया गया और बैठा दिया गया आमरण अनशन पर। आमरण अनशन वैसे ही देश के महात्मा के सबसे प्रबल हथियार था और वो इस हथियार को आये दिन अपनी बातों को मनाने के लिए प्रयोग करते रहते थे। बाबा साहब किसी भी कीमत पर इस मांग से पीछे नहीं हटना चाहते थे वो जानते थे कि इस मांग से पीछे हटने का सीधा सा मतलब था दलितों के लिए उठाई गई सबसे महत्वपूर्ण मांग के खिलाफ में हामी भरना। लेकिन उन पर चारों ओर से दबाव पड़ने लगा और अन्ततः पूना पैक्ट के नाम से एक समझौते में दलितों के अधिकारों की मांग को धर्म की दुहाई देकर समाप्त कर दिया गया। इन सबके बावजूद डॉ. अम्बेड़कर ने हार नहीं मानी और समाज के निचले तबकों के लोगों की लड़ाई जारी रखी। अम्बेड़कर के प्रयासों का ही ये परिणाम है कि दलितों के अधिकारों को भारतीय संविधान में जगह दी गई। यहाँ तक कि संविधान के मौलिक अधिकारों के जरिए भी दलितों के अधिकारों की रक्षा करने की कोशिश की गई।

## निष्कर्ष

वोट की इस राजनीति में दलितों के साथ जो अमानवीय अत्याचार होते रहे है वे इस बात को सिद्ध करते है कि शक्तिशाली हमेंशा कमजोरों का शोषण करेंगे। हिन्दी उपन्यासों में भी यह बात प्रखर रूप में सामने आती है। नमिता सिंह लिखती है– ''महाभोज के दलित और अभावग्रस्त लोग आज भी आतंक के सायें में जी रहे है, वे मनुष्य नहीं केवल वोटर है।' कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि 'महाभोज' की प्रासंगिकता आज भी जरूरी हस्तक्षेप है जो स्वार्थी नेताओं को समझने के लिए सार्थक बयान करते हुए दलितों की विवशता और असहाय स्थितियों का जींवत दस्तावेज बन जाता है।

संदर्भः–

(1) दलित साहित्य और समसामयिक संदर्भ
(2) हिन्दी उपन्यासों में दलित वर्ग
(3) दलित साहित्य एक मूल्यांकन
(4) दलित चेतना और समकालीन हिन्दी
(5) हिन्दी उपन्यास समकालीन विमर्श
(6) ''दलित दूल्हा घोड़ा पर चढ़कर जा रहा था बारात, ऊँची जाति वाले आए और खींच दी लगाम, गिरकर लड़का घाय'' – Jansatta.
(7) '' मध्य प्रदेश : दबंगों ने दलित दूल्हे को घोड़ी चढ़ने से रोका, केस दर्ज'' – AajTak.
(8) कितना सच हुआ दलितों के लिए भीमराव अंबेडकर का सपना ? – दा इंडियन वायर
(9) भारतीय दलित आंदोलन : एक संक्षिप्त इतिहास, लेखक : मोहनदास नैमिशराय, बुक्स फॉर चेन्ज, आई.एस.बी.एन. : 81-87830-51-1 https://epustakalay.com/writer/39913/

(10) ताकि बचा रहे लोकतन्त्र, लेखक – रवीन्द्र प्रभात, प्रकाशक–हिन्द युग्म, 1 , जिया सराय, हौज खास, नई दिल्ली–110016, भारत वर्ष–2011 , आई एस बी एन 8191038587, आई एस बी एन 9788191038583

(11) दलित साहित्य के प्रतिमान : डॉ. एन. सिंह, प्रकाशक : वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली –110002, संस्करण : 2012

(12) मानसरोवर : प्रकाशक : हंस बुक डिपो, इलाहाबाद–3